विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-3
ऋग्वेद की रचना ईसा से पाँच हजार वर्ष पहले
प्रमोद भार्गव

पृष्ठ क्र. 4-5
वैदिक विज्ञान में जीव-चेतना
डॉ. सी.पी. त्रिवेदी

पृष्ठ क्र. 6-7
विक्रमादित्य कालीन प्रतिमाएँ विदिशा म्यूजियम में
डॉ. किरण शर्मा

पृष्ठ क्र. 8
पुस्तक चर्चा
राजमहिषी मामोलाबाई
मनोज कुमार

ऋग्वेद की रचना ईसा से पाँच हजार वर्ष पहले

प्रमोद भार्गव

'चरक-संहिता'आयुर्वेद का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। चरक ने ऋषि-मुनियों द्वारा रचित संहिताओं को परिमार्जित करके 'चरक-संहिता' की रचना की। भारत में चिकित्सा विज्ञान का इतिहास वैदिक काल में ही चरम पर पहुँच गया था। क्योंकि वनस्पतियों के औषधि रूप में उपयोग किए जाने का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में उपलब्ध है। ईसा से करीब डेढ़ हजार साल पहले लिखी गई सुश्रुत संहिता में शल्य-विज्ञान का विस्तृत विवरण है। ऋग्वेद की रचना ईसा से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व हुई मानी जाती है। ऋग्वेद के पश्चात अथर्ववेद लिखा गया जिसमें भेषजों की उपयोगिताओं के वर्णन है। भेषजों के सुनिश्चित गुणों और उपयोगों का उल्लेख अधिक विस्तार से आयुर्वेद में हुआ है। यही आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा विज्ञान की आधारशिला है। इसे उपवेद भी माना गया है। इसके आठ अध्याय हैं जिनमें आयुर्विज्ञान और चिकित्सा के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है। इसका रचनाकाल पाश्चात्य विद्वानों ने ईसा से ढाई से तीन हजार साल पुराना माना है। इसके आठ अध्याय हैं, इसलिए इसे 'अष्टांग आयुर्वेद' भी कहा गया है।

आयुर्वेद की रचना के बाद पुराणों में सुश्रुत और चरक ऋषियों और उनके द्वारा रचित संहिताओं का उल्लेख है। चरक संहिता में रचक, वामनकारक द्रव्यों और उनके गुणों का वर्णन है। चरक एक महर्षि एवं आयुर्वेद विशारद के रूप में विश्व विख्यात हैं। इन्होंने रोगनासक एवं रोगनिरोधक दवाओं का आविष्कार करने के साथ उनके उपचार के उपाय धातु-भस्मों से करने की शुरुआत की। चरक संहिता में सोना, चाँदी, लोहा, पारा आदि धातुओं की भस्मों एवं उनके उपयोग का वर्णन मिलता है।

संस्कृत ग्रंथों में उल्लेख है कि धरा पर प्राणियों की सृष्टि से पहले ही प्रकृति ने घटक-द्रव्य युक्त वनस्पति जगत की सृष्टि कर दी थी, ताकि रोगग्रस्त होने पर उपचार के लिए मनुष्य उनका प्रयोग कर सके। भारत के प्राचीन वैद्य धन्वन्तरि और उनकी पीढ़ियों ने ऐसी अनेक वनस्पतियों की खोज व उनका रोगी मनुष्य पर प्रयोग किए। इन प्रयोगों के निष्कर्ष श्लोकों में ढालने का उल्लेखनीय काम भी किया, जिससे इस खोजी विरासत का लोप न हो। इन्हीं श्लोकों का संग्रह 'आयुर्वेद' है। एक लाख श्लोकों की इस संहिता को 'ब्रह्म-संहिता' भी कहा जाता है। इन संहिताओं में सौ-सौ श्लोक वाले एक हजार अध्याय हैं। बाद में इनका वर्गीकरण भी किया गया। इसका आधार अल्प-आयु तथा अल्प-बुद्धि को बनाया गया। वनस्पतियों के इस कोष और उपचार विधियों का संकलन 'अथर्ववेद' है। अथर्ववेद के इसी सारभूत सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान धन्वन्तरि ने पहले दक्ष प्रजापति को दिया और फिर अश्विनी कुमारों को पारगंत किया। अश्विनी कुमारों ने ही वैद्यों के ज्ञान-वृद्धि की दृष्टि से 'अश्विनी कुमार संहिता' की रचना की।

इसी कालखंड में सद्वैद्य वाग्भट्ट ने धन्वन्तरि से ज्ञान प्राप्त किया और 'अष्टांग हृदय संहिता' की रचना की। सुश्रुत संहिता तथा अष्टांग हृदय संहिता आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रंथों के रूप में आदिकाल से आज तक हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। आयुर्वेद व अन्य उपचार संहिताओं में स्पष्ट उल्लेख है कि प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व पंच-तत्वों से निर्मित है और सम्पूर्ण प्राणी स्वेदज, जरायुज, अण्डज और उद्भिज रूपों में विभक्त हैं। इन शास्त्रों में केवल मनुष्य ही नहीं पशुओं, पक्षियों और वृक्षों के उपचार की विधियाँ भी उल्लेखित हैं। साफ है, भारत में चिकित्सा विज्ञान का इतिहास वैदिक काल में ही चरम पर पहुँच गया था क्योंकि वनस्पतियों के औषधि रूप में उपयोग किए जाने का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में उपलब्ध हैं।

मानव शरीर की संरचना और स्त्री शरीर में गर्भ-विज्ञान को सबसे पहले चरक ने जाना। चरक ने आचार्य अग्निवेश के अग्निवेश-तंत्र में कुछ नए अध्याय जोड़कर उसे प्रासंगिक बनाया। इसे ही चरक-संहिता कहा गया। चरक की शिक्षा-दीक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय में हुई थी। इनके गुरु आचार्य वैशम्पायन थे। कालांतर में इसे विदेशी आक्रांताओं ने नष्ट करके इसके पुस्तकालय में आग लगा दी थी। वर्तमान में तक्षशिला पाकिस्तान में है। चरक ईसा से 200-300 वर्ष पहले कुषाण राज्य के राज्य वैध थे। इस समय कनिष्क का शासन था। इसका उल्लेख त्रिपिटक के चीनी अनुवाद में मिलता है। हालाँकि कुछ लोग इन्हें बौद्धकाल से भी पहले का वैद्य मानते हैं। उस कालखंड में उनकी गणना भारतीय औषधि विज्ञान एवं शरीर संरचना तथा विकास के मूल प्रवर्तक में होती थी। आठवीं शताब्दी में चरक-संहिता का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ और इस शास्त्र की महिमा पश्चिमी देशों तक पहुँच गई। चरक कहते थे, 'जो चिकित्सक अपने ज्ञान और समझ का दीपक लेकर रोगी के शरीर को नहीं समझता, वह बीमारी कैसे ठीक कर सकता है, इसलिए सबसे पहले उन सब कारणों का अध्ययन करना चाहिए, जो मनुष्य को रोगी बनाते हैं। तत्पश्चात् उपचार करना चाहिए।'

चरक पहले ऐसे चिकित्सा विज्ञानी थे, जिन्होंने पाचन, चयापचय यानी भोजन पचाने की प्रक्रिया और शरीर प्रतिरक्षा की अवधारणा अभिव्यक्त की थी। उन्होंने कहा था कि शरीर में पित्त, कफ और वायु के कारण दोष उत्पन्न हो जाते हैं। ये दोष तब उत्पन्न होते हैं, जब रक्त, मांस और मज्जा खाए हुए भोजन पर प्रतिक्रिया करती हैं। चरक ने ही यह अवधारणा दी थी कि सामान्य मात्रा में लिया गया आहार अलग-अलग शरीर में भिन्न-भिन्न दोष पैदा करता है। अर्थात एक शरीर दूसरे शरीर से भिन्न होता है अतएव बीमारी तब उत्पन्न होती है, जब शरीर के तीनों दोष असंतुलित हो जाते है। इस संतुलन को बनाए रखने के लिए ही चरक ने अनेक औषधियों का निर्माण किया, बल्कि उनका वर्गीकरण करके एक ऐसी प्रणाली विकसित की जिससे औषधि विज्ञान और उसके रोग पर प्रभाव को प्रशिक्षु वैध आसानी से समझ सकें।

संस्कृत में लिखी चरक संहिता को आठ स्थान और 120 अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसमें 12000 श्लोक और 2000 प्रकार की दवाओं का वर्णन है। सूत्र स्थान में आहार-विहार, पथ्य-अपथ्य, शरीर एवं भ्रूण संरचना और मानसिक रोगों की चिकित्सा का वर्णन है। विमान स्थान में स्वादिष्ट, रुचिकर और पौष्टिक आहार का वर्णन है। शरीर स्थान में मानव शरीर की रचना, गर्भ में बालक के विकास की प्रक्रिया तथा उसकी अवस्थाओं का उल्लेख है। इंद्रिय स्थान में रोगों की चिकित्सा पद्धति का वर्णन है। चिकित्सा स्थान में कुछ विशेष रोगों के उपचार बताए गए हैं। कल्प स्थान में साधारण एवं मौसमी रोगों के उपचार बताए गए हैं। सिद्धि स्थान में भी सामान्य रोगों के बारे में बताया गया है। चरक संहिता में शल्य चिकित्सा पद्धति का उल्लेख नहीं मिलता है। इसका उल्लेख सुश्रुत संहिता में मिलता है। चरक संहिता में भारत के अलावा यवन, शक, चीनी आदि जातियों और नस्लों के खानपान एवं जीवनशैली का भी उल्लेख उपलब्ध हैं।

चरक ने केवल एकल औषधियों को ही 45 वर्गों में विभाजित किया है। इसमें औषधियों की मात्रा और सेवन विधियों का भी तार्किक वर्णन है। इनका आज की प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों से साम्य है। यहाँ तक की कुछ विधियों में इंजेक्शन द्वारा शरीर में दवा पहुँचाने का भी उल्लेख है। यह वह समय था जब भारतीय चिकित्सा विज्ञान अपने उत्कर्ष पर था और भारतीय चिकित्सकों की भेषज तथा विष विज्ञान सम्बन्धी प्रणालियां अन्य देशों की तुलना में उन्नत थी। भूमि गर्भ में समाए अनेक खनिज पदार्थों के गुणों का ऋषि परंपरा ने गहन अध्ययन किया

था और रोग तथा भेषजों की मदद से उनके उपचार की दिशा में वैज्ञानिक ढंग से अनुसंधान किए। सुश्रुत और चरक की आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में अब गणना होने लगी है। यही कारण है कि एलोपैथी की दवा निर्माता कंपनियाँ भी सुश्रुत और चरक के अपने कैलेंडरों में शल्यक्रिया करते हुए चित्र छापने लगे हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली से प्रभावित आचार्य आसलर ने महर्षि चरक के नाम से अमेरिका के न्यूयॉर्क में 1898 में ही 'चरक-क्लब' स्थापित कर दिया था। इन विवरण से पता चलता है कि धन्वन्तरि द्वारा आविष्कृत आयुर्वेद की ज्ञान परंपरा वैदिक युग के पूर्व से लेकर भारत में विदेशी आक्रांताओं के आने से पहले तक विकसित होती रही है। चरक संहिता का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। अरब के इतिहासकार अलबरूनी ने कहा है, 'हिंदूओं की एक पुस्तक चरक संहिता के नाम से प्रसिद्ध है, जो कि औषधि विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है।'

उत्कृष्ट चिकित्सा पद्धति होने के पश्चात भी इसका पतन क्यों हुआ? हमारे यहाँ संकट तब पैदा हुआ, जब तांत्रिकों, सिद्धों और पाखंडियों ने इनमें कर्मकांड से जीवन की समृद्धि का घालमेल शुरू कर दिया। इसके तत्काल बाद एक और बड़ा संकट तब आया, जब भारत पर यूनानियों, शक, हूण और मुसलमानों के हमलों का सिलसिला बना रहा। जो कुछ शेष था, उसे नेस्तनाबूद करने का काम अंग्रेजों ने किया। इस संक्रमणकाल में आयुर्विज्ञान की ज्योति न केवल धुंधली हुई, बल्कि नष्टप्राय हो गई। नए शोध और मौलिक ग्रंथों का सृजन थम गया। इन आक्रमणों के कारण जो अराजकता, हिंसा और अशांति फैली, उसके चलते अनेक आयुर्वेदिक ग्रंथ छिन्न-भिन्न व लुप्त हो गए। आयुर्विज्ञान के जो केंद्र और शाखाएं थीं, वे पंडे-पुजारियों के हवाले हो गईं, नतीजतन भेषज और जड़ी-बुटियों के स्थान पर तंत्र-मंत्र के प्रयोग होने लगे। यही वह कालखंड था, जब बौद्ध धर्म ने भी पतनशीलता की राह पकड़ ली। इसके साथ ही जो शल्यक्रिया व चिकित्सा से जुड़ा विज्ञान था, उसमें अनुशीलन तो छोड़िए, वह यथास्थिति में भी नहीं रह पाया।

इसके बाद जो रही-सही ज्ञान परंपराएँ थी, उन पर सुनियोजित ढंग से पानी फेरने का काम अंग्रेजों ने कर किया। डॉ. धर्मपाल की पुस्तक 'इंडियन साइंस एंड टेक्नोलॉजी' में लिखा है कि 1731 में बंगाल में डॉ. ओलिवर काउल्ट नियुक्त थे। काउल्ट ने लिखा है कि 'भारत में रोगियों को टीका देने का चलन था। बंगाल के वैद्य एक बड़ी पैनी व नुकीली सुई से चेचक के घाव की पीब लेकर उसे टीका की जरूरत पड़ने वाले रोगी के शरीर में कई बार चुभोते थे। इस उपचार पद्धति को संपन्न करने के बाद वे उबले चावल की लेई सी बनाकर रोगी के घाव पर चिपका देते थे। इसके तीसरे या चौथे दिन रोगी को बुखार आता था। इसलिए वे रोगी को ठंडी जगह में रखते थे और उसे बार-बार ठंडे पानी से नहलाते थे, जिससे शरीर का ताप नियंत्रित रहे। डॉ. काउल्ट ने लिखा है कि टीका लगाने की विधि मेरे भारत आने के भी डेढ़ सौ साल पहले से प्रचलन में थी। यह काम ज्यादातर ब्राह्मण करते थे और साल के निश्चित महीनों में वे इसे अपना उत्तरदायित्व मानते हुए घर-घर जाकर रोगी ढूंढ़ते थे।'

महर्षि चरक के नाम की लेंगे शपथ : देश में चिकित्सा विज्ञान अर्थात एमबीबीएस की पढ़ाई कर रहे छात्रों को अब हिप्पोक्रेटिक ओथ की बजाय महर्षि चरक की शपथ (ओथ) दिलाई जाएगी। इसकी शुरूआत नए पाठ्यक्रमों से होगी। दुनियाभर में मेडिकल की पढ़ाई कर रहे छात्र एक शपथ लेते हैं, जिसे 'हिप्पोक्रेटिक ओथ' कहा जाता है। यह शपथ ग्रीक चिकित्साविद् हिप्पोक्रेट्स को समर्पित है। 'चरक संहिता' में संस्कृत में लिखी गई इस शपथ में गुरु अपने शिष्य को निर्लिप्त दायित्व पालन के निर्देश देते हैं। संसद में कहा है कि चरक-शपथ को अनिवार्य नहीं वैकल्पिक रखा जाएगा।

लेखकों से निवेदन

महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ का नवीन प्रकल्प **'विक्रम संवाद'** पाक्षिक आलेख सेवा है. विभिन्न प्रकाशन-प्रसारण माध्यमों को नि:शुल्क प्रेषित किया जाता है. इस आलेख सेवा का उद्देश्य प्रमाणिक एवं अज्ञात तथ्यों से पाठकों का परिचय कराना है. आपके पास ऐसी कोई सामग्री हो तो कृपया हमें भेजें.

-संपादक

वैदिक विज्ञान में जीव-चेतना

डॉ. सी.पी. त्रिवेदी

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में जिसे कई बार जिसे चमत्कार का नाम दिया जाता है अथवा नवीन शोध कहा जाता है, वह सब वैदिक विज्ञान में सैकड़ों वर्षों से प्रचलन में है। इन्हीं में एक विषय है बच्चे का जन्म लेना। बच्चा कैसे माँ के गर्भ में आता है और किस तरह उसका विकास होता है और इसके साथ ही डीएनए की प्रक्रिया क्या है, आदि-इत्यादि के बारे में वैदिक ज्ञान अनेक अनछुये पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

भारतीय संस्कृति और वेद का ध्वनि विज्ञान आधार है, जिस पर सृष्टि और जीवन आधारित है। यही अविनाशी अक्षर शब्द, विचार मनुष्य के जन्म जन्मान्तर की पहचान है। यह ज्ञान विश्व को भारत की देन है, जिसके कारण विश्व में भारत विश्व गुरु कहलाता था और वैदिक संस्कृति विश्वव्यापी संस्कृति थी।

मनुष्य का जन्म माँ के गर्भ में होता है, गर्भ में निशेचन के पश्चात उत्पन्न डीएनए के जोड़े को सरस्वती वाक् उत्प्रेरित कर डीएनए के मन संकेत को जागृत करती है, और जीव डीएनए के एक जोड़े से कमल के फूल के समान आकार ग्रहण करता है। अर्थात जिस प्रकार कमल जल में पल्लवित होता है, परन्तु जल उसकी सतह पर नहीं ठहरता, इसी प्रकार विचार तरंगें जीव के शरीर का स्पर्श करती है, परन्तु ठहरती नहीं हैं।

अविनाशी वाक् तरंग की एक तरंग आकाशीय समुद्र से जीव कोश को थामे हुए है। इसे लौह स्तम्भ पर चित्र द्वारा अभिव्यक्त किया गया है कि एक ध्वनि तरंग अश्विन न्यूक्लियोटाइड जोड़े के मध्य में विपरीत अनुर्द्धेय तरंग के द्वारा क्रियाशील है और बाहर से विपरीत अनुर्द्धेय तरंग के द्वारा जीव को नियंत्रित करती है। सफेद प्रकाश की सात किरणें तथा ध्वनि के सात स्वर सृष्टि का आधार है। प्रकाश और ध्वनि एक दूसरे के पूरक हैं। जिसे वेदों में सप्त सिंधु कहा गया है, जिसका तात्पर्य है सात स्वर, जो असंख्य जीवन धाराओं के रुप में इस आकाशीय जीवन समुद्र में नदियों के समान गति कर रही है।

व्यक्तिगत जीवन धारा, स्वर को सरस्वती कहा गया है, जो नदी की धारा के समान जीव शरीर में बह रही है, और जीवन समुद्र में अपने गंतव्य की तरफ अग्रसर है। यही सरस्वती क्रिया हेतु विचारों का स्फुरण कर जीवन का जीवनपर्यंत नियंत्रण करती है। अक्षर शब्द की तरंगें अपनी गति और आवृत्ति के अनुसार जब विपरीत गुणों वाली तरंग से टकराती है तो तुरन्त पलटती है, परन्तु अपना चिन्ह अंकित कर देती है, जो प्रकाश की अनुर्द्धेय तरंगों में परिवर्तन उत्पन्न कर देती है, जो विद्युत स्पंदन के द्वारा तुरन्त अंत तक पहुँच जाती है। जैसा कि ध्वनि तरंगों के कान से टकराने पर होता है, और दिमाग उसे तुरन्त कार्य रुप में परिणित कर देता है।

वैदिक ज्ञान को सदियों से श्रुति स्मृति का पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परा के द्वारा पोषित और सुरक्षित किया गया, जो हजारों वर्ष की यात्रा के पश्चात अपने पूर्ण रुप में हमारे सामने है। यह विश्व के लिए आश्चर्य का विषय है कि वेद मंत्र बिना किसी रुपांतरण के अपने वास्तविक रुप में सुरक्षित है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम इस अक्षुण्ण परम्परा के महत्व को हृदय से ग्रहण करे, जो यह सन्देश दे रही है कि जीव की प्रत्येक पीढ़ी नई है, परन्तु वाक-सरस्वती की चेतन ऊर्जा सनातन है, जो पीढ़ी दर पीढी मनुष्यों का नये जन्म के साथ अनुसरण करती है।

जीवन-सिद्धान्त विश्व व्यापी वेद : जीवन की उत्पत्ति एक डीएनए और कोश से अनुवांशिक पुनर्संयोजन द्वारा हुई है। जीव द्रव का स्पंदन और गति जीव चेतना का सिद्धान्त है। कोश के निष्क्रिय या मृत होने पर स्पंदन और गति बंद हो जाती है और चेतना लुप्त हो जाती है।

मनुष्य के श्रवण यंत्र कान के पर्दे से शब्द टकराकर पलट जाते हैं, और पर्दे की कोश के डीएनए में उत्पन्न परिवर्तन विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा की अनुर्द्धेय तरंग में परिवर्तन है, जो तुरन्त दिमाग को कार्य के लिए प्रेरित करता है। अर्थात शरीर एक डीएनए और उसकी अनुर्द्धेय तरंग से विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा के द्वारा एक सूत्र में गुंथा हुआ है। यही व्यक्ति की व्यक्तिगत पहचान है, जो मृत्यु के बाद भी जन्म जन्मान्तर तक मनुष्य नए जन्म के साथ अनुसरण करती है।

अक्षर शब्द की अविनाशी तरंगें जब गर्भ में प्रथम संयोजित डीएनए के प्रथम मन संकेत से टकराती है, तो समानधर्मा संकेत

डीएनए संकेत की अनुर्द्धेय तरंग में परिवर्तन कर उसे बाह्य वातावरण से सम्बर्नधित कर देता है। यह सम्बन्ध जीवन भर चलता है, और पूर्व जन्म के कर्म जीवनपर्यंत मार्गदर्शन करते हैं।

पृथ्वी पर प्राकृतिक प्रकोप और हिम युग के अवतरण के साथ यह संस्कृति भारतीय उपमहाद्वीप तक सीमित हो गई। जिसके प्रमाण वेद विज्ञान हैं। जिसकी जड़ें अमेरिका में पल्लवित हुई, और मनुष्य जीवन में चेतना की खोज का सहभागी बना। उत्तरी अमेरिका में ग्राण्ड केन्योन की आश्चर्यजनक गुफाएँ इसकी साक्षी हैं। इस भूमिगत शहर का निर्माण 11000 हजार वर्ष पूर्व वैदिक वैज्ञानिकों द्वारा जीवन के अहम् पहलुओं पर अध्ययन के लिए किया गया था। यह जिनेवा में हिग्स फिल्ड की खोज के लिए फ्रांस तथा जिनेवा के मध्य निर्मित लार्ज हेड्रान कोलाईडर भूमिगत टनल से की जा सकती है। पत्थरों और चट्टानों पर उकेरे शैल चित्र संकेत वैदिक विज्ञान की गाथा का बखान करते हैं कि ब्रह्माण्ड और पृथ्वी पर जीवन का रहस्य पृथ्वी और समुद्र के गर्भ में है। जहाँ पृथ्वी का भूचुम्बकीय बेल्ट उपस्थित है, यह अति सूक्ष्म जीवन्त ऊर्जा का स्रोत है। जिसके द्वारा समय की गति के समान ब्रह्माण्ड की यात्रा सम्भव है। इसी की खोज आधुनिक विज्ञान भी कर रहा है।

मिस्र के पिरामिड तथा ग्राण्ड केन्योन के भूमिगत गहरी गुफाओं में इस जीवन्त ऊर्जा का राज समाहित है। इसकी खोज के पश्चात कहा गया कि अति सूक्ष्म ध्वनि तरंगें सुनामी प्रलय और सृष्टि और जीवन का स्रोत हैं। ध्वनि और प्रकाश की तरंगें इसका विकसित रुप हैं। डीएनए से जीवन की उत्पत्ति के साथ ध्वनि तरंगों का विकास अक्षर शब्द और विचार के रुप में हमारे सामने है। यही अक्षर शब्द और विचार जीवन की जन्म जन्मांतर की पीढ़ी दर पीढ़ी मनुष्य का नए जीवन के साथ स्वागत करती है। अविनाशी डीएनए विचार स्फुरण का माध्यम है। अर्थात डीएनए के द्वारा विकसित दिमाग और इन्द्रियाँ क्रिया के मात्र कारक हैं।

अविनाशी शब्द विचार ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त हैं, इनकी कोई सीमा विभाजन नहीं है। जिस प्रकार से सफेद प्रकाश की सात किरणों में लाल अनुर्द्धेय तरंग प्रकाश संश्लेषण द्वारा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होकर अक्षय होती है। उसी प्रकार शब्द विचारों के सात स्वर की एक अनुर्द्धेय तरंग गर्भ में डीएनए के मन संकेत को स्फुरित करती है। जो व्यक्ति विशेष के जीवन विचार और डीएनए फिंगर प्रिंट की पहचान है। डीएनए की स्फुरित अनुर्द्धेय तरंग के द्वारा डीएनए उत्प्रेरित होकर जीव के शरीर का विकास करता है। यही स्फुरित अनुर्द्धेय तरंग जीवन पर्यंत जीव को आकाशीय समुद्र में व्याप्त अनन्त अक्षय विचार ऊर्जा से सीधे सम्पर्क की कारक है। तदनुसार समान विचारों की आवृत्त मनुष्य को क्रिया हेतु प्रेरित करती है। डीएनए में विचारों का सम्प्रेषण और अनुवाद साथ-साथ होता है, तदनुसार क्रिया का लेखा डीएनए में संग्रहीत होता जाता है, जिसे स्मृति कहते है। जो शब्द विचार और दृष्य चित्र के द्वारा उत्प्रेरित होकर जीव को क्रिया हेतु प्रेरित करते हैं।

इस वैदिक ज्ञान का स्रोत कोई अलौकिक संदेश नहीं वरन् यथार्थ के वैज्ञानिक धरातल पर इसे विज्ञान की कसौटी पर सिद्ध किया गया। तत्पश्चात यह ज्ञान परम्परा के माध्यम से पल्लवित हुआ, जो आज भी हमारे भारतीय जीवन में रचा-बसा है। परन्तु विडम्बना यह है कि वेद ज्ञान को हमने ऋषियों के ध्यान की उपज और पाश्चात्य संस्कृति की आँधी में वेदों को धर्म ग्रंथ की श्रेणी में रख दिया। भारत के प्राचीन गौरव को नकारने के लिए लार्ड मॅकाले ने इसे हिन्दू नाम दे दिया और भारत विभाजन के गहन अंधकार से ग्रस्त हो गया। इसे स्वीकार कर हमने विश्व में विज्ञान के स्रोत का स्वयं ही अवमूल्यन कर दिया, जिन्हें सिर्फ विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है।

इसे किसी धर्म का नाम देना भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन है। वेद मानव सभ्यता के प्राचीनतम ग्रंथ है, जो पृथ्वी पर सुसंस्कृत मानव का प्रथम शब्द है, जो पृथ्वी पर मानव मात्र की विरासत है।

यूट्यूब चैनल 'भारत विक्रम' देखने के लिए लॉगइन करें

https://youtube.com/channel/UCpeZ-d1AJUKlJtSKpiHuUJw

विक्रमादित्य कालीन प्रतिमाएँ विदिशा म्यूजियम में

डॉ. किरण शर्मा

जिला पुरातत्व संग्रहालय विदिशा की स्थापना वर्ष 1940 में हुई थी। इस संग्रहालय में मूर्तिकला का महत्वपूर्ण संग्रह है, जो विदिशा एवं रायसेन जिले से प्राप्त है, संग्रहालय में मौर्य काल से लेकर 20वीं शताब्दी तक की दुर्लभ मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। महाराजा विक्रमादित्य का शासनकाल लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है। महाराजा विक्रमादित्य शिल्प साधना के प्रेमी थे, उनके शासन काल की विदिशा, बेसनगर एवं उदयगिरि (विदिशा) से कुछ महत्वपूर्ण प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं, जिनका काल ईसा पूर्व प्रथम शती है, संग्रहीत प्रतिमाओं का विवरण इस प्रकार है –

1.स्तम्भ शिखर : विदिशा से प्राप्त यह स्तम्भ शिखर में सर्वप्रथम स्तम्भ जोड़ने का गर्त जिसके (सं.क्र. 341) चारों ओर सात सर्पफण तथा त्रिभुजाकार आकृति अधोमुख, सहसदल कमल, कमल के ऊपर रस्सी(अबेक्स) शिल्पांकित है, लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित 107 49 49 से.मी. आकार की प्रतिमा ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी की हैं।

2. नाम प्रतिमाओं से युक्त जैन शिल्प खण्ड : विदिशा से प्राप्त इस शिल्पखण्ड में तीन-तीन फणों से युक्त नाग-नागिन आपस में लिपटे हुये पाँच-पाँच गुत्थियों का स्पष्ट आलेखन महत्वपूर्ण है। (सं.क्रं. 34) नागफणों के दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ जिन प्रतिमाओं का अंकन मनोहारी है। यह प्रतिमा संग्रहालय की जैन प्रतिमाओं में सबसे प्राचीनतम प्रतिमा है। सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित 67 34 22 से.मी. आकार की प्रतिमा प्रथम शती ईसा पूर्व की है।

3. **यक्ष :** विदिशा से प्राप्त इस यक्ष प्रतिमा के पैर, सिर और दोनों हाथ भग्न है। कंधे पर यज्ञोपतीत का आलेखन है। छाती पर फेटा कसा है, नीचे पहिनी धोती, मेखला से इस प्रकार सजाई है। गहरे लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित 126 55 30 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग ईसा पूर्व प्रथम शती की है।

4. नन्दी : बेसनगर (विदिशा) से प्राप्त यह नन्दी प्रतिमा (सं.क्र 18) आयताकार चौकी पर खड़े हुये हैं, मशाल नन्दी का यर्थात अंकन किया गया है। लाल बुलआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा लगभग ईसा पूर्व प्रथम शती की है।

5. नन्दी : विदिशा से प्राप्त नन्दी प्रतिमा के पैर व सींग भग्न हैं। (सं.क्र 269) गर्दन पर सिलवटों का आलेखन है। लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित 104 33 43 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग ईसा पूर्व प्रथम शती ईस्वी की है।

6. नन्दी : उदयगिरि (विदिशा) से प्राप्त नन्दी प्रतिमा का मध्य भाग है। (सं.क्र. 273) पैर व सिर भग्न है। प्रकृति के प्रकोप के कारण प्रतिमा खण्डित है। लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित 90 34 53 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग ईसा पूर्व प्रथम शती की है।

अँवलेश्वर की वापी और उसका तटक्षेत्र

सन् 1975 के पूर्व डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर को पुरातत्व के जिज्ञासु अन्वेषणकर्ता डॉ. सुरेन्द्रकुमार आर्य और जगदीश जोशी ने मध्यप्रदेश के प्राचीन नगर दशपुर से प्रतापगढ़ से 8 किलोमीटर पहले 4 किलोमीटर दक्षिण में अँवलेश्वर नामक ग्राम में शुंगकालीन पुरातत्व अवशेषों की सूचना दी। तत्पश्चात् पुन: इन दोनों विद्वानों द्वारा सर्वेक्षण किया गया। डॉ. वाकणकर के साथ मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग के डॉ. राजाराम सिंह, डॉ. जे.एन. दुबे, डॉ. कैलाशचन्द्र पाण्डे, डॉ. भारत जोशी आदि ने 1978 में पुन: सर्वेक्षण किया था। दो दिवस तक गहन सर्वेक्षण कार्य किया गया। प्राप्त स्तम्भावशेष और अन्य पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर इस क्षेत्र को सम्राट विक्रमादित्यकालीन माना गया। उसकी एक रिपोर्ट तैयार कर डॉ. वाकणकर ने प्रकाशित की।

ग्राम अँवलेश्वर का निरन्तर विद्वानों के द्वारा सर्वेक्षण किया जाता रहा। यहाँ पर मध्यप्रदेश और उसके बाहर के प्रख्यात पुराविदों और इतिहासकारों ने अपने शोधार्थियों के साथ सर्वेक्षण कार्य किया है। 9 जुलाई 2012 को महाराजा विक्रमादित्य

शोधपीठ के (तब के)निदेशक डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित, कावेरी शोध संस्थान के निदेशक डॉ. श्यामसुन्दर निगम और विक्रम विश्वविद्यालय पुरातत्व संग्रहालय के प्रभारी डॉ. रमण सोलंकी ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण में यह पाया कि पूर्व में डॉ. वाकणकर द्वारा किया गया स्तम्भावशेष का वाचन जिसमें दशपुर के भागवत ने पथिकों के लिए विक्रमादित्य के शासनकाल में जलाशय का निर्माण करवाया है। यह स्तम्भ लेख ई.पू. प्रथम सदी की ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है। यह लेख में विक्रमादित्य स्पष्ट दृष्टिगत है। स्तम्भ लेख के दाहिनी ओर

ओम स्वस्ति.....जयति सकल.....प
त्रेवेदम्म जयं कुंड दृ.....प
उपमखंड विक्रमादित्य–जयति उद्केत प्रदत्त
राज्ञः.....क्षी गदीमि.....
भगवतेन हरति
जलाशया जलं एकेह सर्वन्नेव्व

बायीं ओर

राज्ञो श्री पंथान
सचं जलं पावि कीर्ति
पदन्त गर्भालियेन तंनीज निभीत.....च
जमश्रेनी युग न त तरो दानेन प्रदस्त
दशपुरोद.....भवेन भगवतेन सः।

इस प्रस्तर लेख के अतिरिक्त भी विक्रमादित्य से सम्बर्नधित अवशेषों की खोज निरन्तर होती रही। किये गए सर्वेक्षण में स्तम्भ का गोल शीर्ष भाग जो समीप ही रखा था उसे देखा गया। जिसके शिरीष राजपुरोहित द्वारा फोटो लिये गये जिसमें तीन पंक्तियाँ स्पष्ट हुई जो ई.पू. की ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में है –

1. विक्रमादित्य दातेभ्य
2. .....पोर.....सविमहमय
3. .....दशपुर

प्रस्तर लेख अवशेषों के पास में ही 30 फीट चौड़ी और 30 फीट लम्बी बावड़ी है, इसमें स्थानीय पत्थरों का निर्माण सामग्री के रूप में उपयोग हुआ है। वर्तमान में 20 फीट तक की गहराई स्पष्ट दिखाई दे रही थी और शेष भाग मिट्टी में दब चुका था।

बावड़ी में उतरने के लिए सीढ़ियों का निर्माण भी किया गया था। बावड़ी से अनुमानित 500 फीट की दूरी पर एक वृहत तालाब का निर्माण भी भग्न रूप में दिखाई देता है जो साढ़े तीन बीघा में फैला हुआ है। वर्तमान में स्थानीय कृषकों को शासन द्वारा पट्टे दिए गए हैं। जिन पर वे कृषि करते हैं। सर्वेक्षण के दौरान तालाब के तट क्षेत्र से शुंगकालीन जैसी ईंटों के अवशेष अत्यधिक मात्रा में दिखाई दिए। यहीं पर स्थानीय लोगों के द्वारा एक मंदिर का निर्माण भी किया गया है। जिसमें ई.पू. के भग्न प्रतिमावशेष भी दिखाई दे रहे हैं। यह क्षेत्र विक्रमादित्य के काल से लेकर वर्तमान आबादी तक इतिहास पर प्रकाश डाल रहा है। मध्यकालीन सती स्तम्भ भी यहाँ पर दृष्टिगोचर होते हैं।

इस स्थल के पास में बसी बस्ती के रहवासियों से हुई चर्चानुसार मकान निर्माण के दौरान भूमि से पात्रावशेष की प्राप्ति होती है।

कुल मिलाकर यह कह सकते है कि उज्जैन के न्यायप्रिय शासक विक्रमादित्य के काल प्राचीन भृगुकच्छ मार्ग पर जाने वाले पथिकों के लिये यहाँ सुलभ जलराशि का निर्माण किया गया था, जिसके निर्माण के पुरासाक्ष्य प्राप्त हो चुके हैं।

यूट्यूब चैनल पर जल्द ही 'विक्रम बानी' का प्रसारण

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ के निदेशक श्रीराम तिवारी कहते हैं कि जल्द ही हम 'विक्रम बानी' के नाम से रेडियो प्रसारण आरंभ करने जा रहे हैं. कोशिश होगी कि 'विक्रम बानी' को रूचिकर श्रोता अपनी सुविधा से यात्रा के दौरान भी सुन सकें. उनके अनुसार महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ ने दस्तावेजीकरण की दृष्टि से करीब करीब 30 किताबों का प्रकाशन पूर्ण कर चुका है और अनेक किताबें प्रकाशनाधीन है. निदेशक श्री तिवारी का कहना है कि विक्रमकालीन इतिहास को जानने वाले सुधि लेखक उम्रदराज हैं और हम उनकी सहायता से यह कार्य पूर्ण कर पा रहे हैं.

पुस्तक चर्चा/मनोज कुमार

राजमहिषी मामोलाबाई

भोपाल की प्रथम महिला शासक का जब भी नाम लिया जाता है, कई दूसरे नाम आते हैं लेकिन मामोलाबाई का नाम बहुतेरे लोग नहीं जानते हैं। लेखक एवं इतिहास मर्मज्ञ घनश्याम सक्सेना की नयी कृति 'राजमहिषी मामोलाबाई' में अनेक ऐसे तथ्य को सामने लाया गया है जो भोपाल रियासत की सल्तनत पर प्रकाश डालता है। भोपाल के दूसरे नवाब यार मोहम्मद की विदुषी, दूरदर्शी, कूटनीतिज्ञ और वीरांगना पत्नी मामोलाबाई के शौर्य विस्तार से उल्लेख पढ़ने को मिलता है। मामोलाबाई ने लगभग 50 वर्ष के अपने शासनकाल अर्थात डी-फेक्टो शासनकाल में डी-जूर दो नवाब बनाये। 18वीं सदी में रजिया सुल्तान और दुर्गावती के बाद मामोलाबाई ने औरतों की आजादी और महिला अधिकारों की चर्चा की। मामोलाबाई हकीकत और कल्पना की जुगलबंदी को पढ़ना अपनेआप में ना केवल सुखकर है बल्कि कई नए कथ्य और तथ्य से वाकिफ भी होना है। यह भी हैरत में डालने वाली बात है कि भोपाल की चार बेगमों ने अपने-अपने संस्मरण लिखवाये लेकिन इनमें कहीं भी मामोलाबाई का उल्लेख नहीं मिलता है। वहीं यह तथ्य मौजूद है कि मामोलाबाई की प्रशंसा ब्रिटिश पॉलिटिकल एजेंट कर्नल मेकल ने की थी। यह जानना भी सुखकर है कि मामोलाबाई को मांजी मामोला कहकर लोक स्मृति में अमर कर दिया गया। यह कथ्य भी चौंकाने वाला है जब मामोलाबाई अपने नवाब पति से मर्द होने से पहले इंसान होने का आग्रह करती हैं। लेखक श्री सक्सेना लिखते हैं कि 'मामोलाबाई एक ऐसी स्वयंसिद्धा महानायिका की गाथा जो यद्यपि सदियों पहले जन्मीं लेकिन जिसकी सोच सदियों आगे की थी।' इतिहास में रूचि रखने वालों और खासतौर पर भोपाल के इतिहास से रूबरू होने वालों के लिए 'राजमहिषी मामोलाबाई' एक उपन्यास, एक किताब नहीं बल्कि ग्रंथ है जिसका एक-एक हर्फ इतिहास की कहानी कहता है।

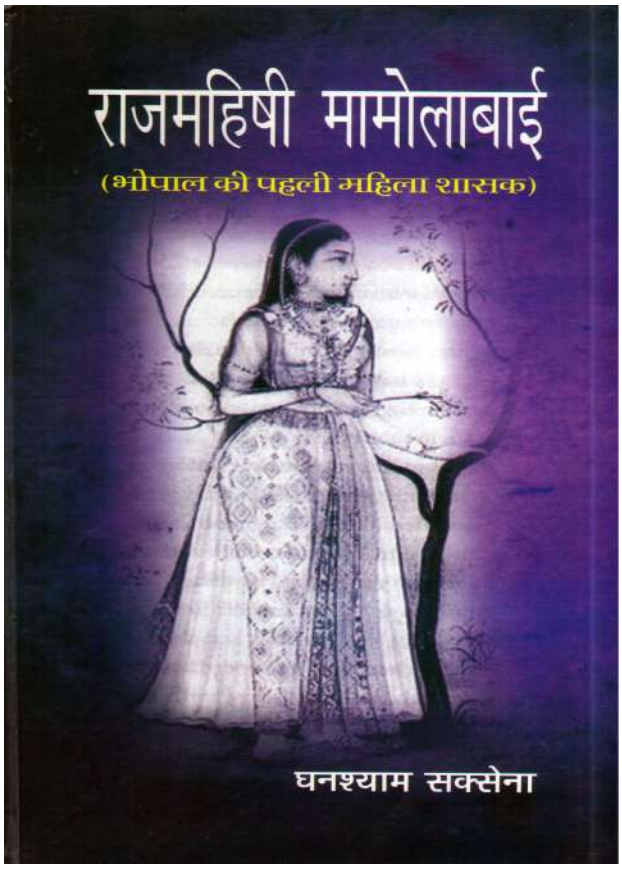

पुस्तक- राजमहिषी मामोलाबाई

लेखक -घनश्याम सक्सेना

प्रकाशक- नमन प्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली

संस्करण : प्रथम 2021

मूल्य- 550/- (पांच सौ रुपये मात्र)

'बुनियादी तौर पर मामोला रूमानी स्वभाव की महिला नहीं थी। परंतु वह अभी तक स्थिर-चित्त भी नहीं हो पायी थीं। उसका मन निरंतर भटकता रहता था। यह मन बड़ा अद्भुत है। सोचता कुछ है। कहता कुछ है। रमता कहीं और है। कहता रहता कहीं और है। मामोला भी कहीं पहुंच गई थी।'

-इसी पुस्तक से

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ संस्थान स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक श्रीराम तिवारी. समन्वयक मनोज कुमार.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन : 0734-2521499 0755-2660407 e-mail : mvspujjain@gmail.com,vikramadityashodhpeeth@gmail.com